भगवती डेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड

बनाम

द पीयरलेस जनरल फाईनेंस इंवेस्टमेंट कंपनी लिमिटेड एवं अन्य

(सिविल अपील संख्या 361-362 /2005)

4 अप्रैल, 2013

[डॉ. बी. एस. चौहान और फकीर मोहम्मद इब्राहिम कलीफुल्ला, न्यायाधिपतिगण]

कंपनी अधिनियम, 1956:

धाराये 397 और 398 - कंपनी की याचिका - अन्य शेयरधारक की सहमति से -मूल याचिकाकर्ताओं द्वारा इसे वापस लेना - का प्रभाव - अभिनिर्धारित किया - वापसी से याचिका अस्तित्वहीन या गैर-रखरखाव योग्य नहीं होगी - रचनात्मक पक्ष जो याचिका दायर करने के लिए सहमति प्रदान करते हैं, मामले में याचिकाकर्ता के रूप में स्थानांतरित होने के हकदार हैं।

धारा 399 - कंपनी याचिका - अन्य शेयरधारक की सहमति से - सहमति का रूप - अभिनिर्धारित किया गया: सहमति को शेयरधारक द्वारा व्यक्तिगत रूप से देने की आवश्यकता नहीं है - यह ऐसे शेयरधारक के पावर ऑफ अटॉर्नी धारक द्वारा दी जा सकती है - मामले के परिहार और निर्वाह के संबंध में सहमति के मुद्दे का निर्णय व्यापक सर्वसम्मति दृष्टिकोण के आधार पर किया जाना चाहिए - यदि शेयरधारक जिसने शुरू में 1/10 शेयर-भाग की आवश्यकता को पूरा करने में मदद करने के लिए सहमति दी थी, तो उसके द्वारा शेयरों का हस्तांतरण या यदि वह शेयरधारक नहीं रह जाता है, तो याचिका की रखरखाव और निरंतरता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

कंपनी नियम, 1959 - नियम 88(2) - कंपनी याचिका - की वापसी - प्रक्रिया, नियम 88(2) के तहत निर्धारित - क्या सीपीसी के तहत प्रक्रिया की प्रयोज्यता को शामिल नहीं किया गया है - अभिनिर्धारित किया गया : नहीं - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908:

आदेश 23 नियम 1(5) – केस को वापस लेना - अन्य पक्षों की सहमति के बिना - औचित्य -अभिनिर्धारित: प्रतिनिधि क्षमता में दायर किया गया मुकदमा वादी के अलावा अन्य व्यक्तियों का भी प्रतिनिधित्व करता है - अन्य पक्षों की सहमति के बिना ऐसी याचिका को वापस लेना अनुचित है और ऐसा आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना है.

सिद्धांत:

'यूबी जस आईबी आईडेम रेमेडियम' –प्रयोज्यता।

'एक्टस क्यूरीए नेमिनेम ग्रेवबिट' - प्रयोज्यता।

प्रतिवादी-कंपनी के दो शेयरधारक, अपीलकर्ता-कंपनी सहित दो शेयरधारक की सहमति से, गलत प्रबंधन और उत्पीड़न का आरोप लगाते हुये कंपनी अधिनियम, 1956 धारा 397 और 398 के तहत याचिका दायर की। कंपनी कोर्ट ने याचिका को सुनवाई योग्य नहीं मानते हुए खारिज कर दिया। दोनों शेयरधारकों ने उच्च न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष दो अपीलें दायर कीं। इसके बाद उन्होंने अपनी अपीलें वापस लेने के लिए आवेदन किया और उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने क्रमशः दिनांक 16.11.1993 और 18.11.1993 के आदेश द्वारा अपीलों को वापस ले लिया हुआ मानकर खारिज कर दिया।

अपीलकर्ता ने उन अपीलों को खारिज करने के आदेश को वापस लेने और उसमें अपीलकर्ताओं को प्रोफार्मा उत्तरदाताओं के रूप में स्थानांतरित करने और अपीलकर्ता को उसमें एकमात्र अपीलकर्ता के रूप में प्रतिस्थापित करने के लिए दो आवेदन दायर किए।

उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने आवेदनों को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि अपीलकर्ता एक अजनबी था जिसका कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था; और ऐसा आवेदन दाखिल करने में अत्यधिक देरी हुई थी। अपीलकर्ता ने विशेष अनुमति याचिका के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। इसे निर्णय दिनांक 26.4.1996 द्वारा निस्तारित किया गया, यह देखते हुए कि अपीलकर्ता समापन याचिका में उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के आदेश के खिलाफ नई अपील कर सकता है और आगे देखा गया कि इसे खंडपीठ द्वारा परिसीमा के आधार पर या सुने जाने के अधिकार के आधार पर खारिज नहीं किया जाएगा; और दोनों शेयर धारकों द्वारा अपील वापस लेने से अपीलकर्ता को ऐसी दलीलें उठाने में कोई बाधा नहीं आएगी जो उसके लिए स्वीकार्य और उपलब्ध हैं। दिनांक 26.4.1996 के आदेश के अनुसरण में अपीलकर्ताओं ने उच्च न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष अपील दायर की, जिसे खारिज कर दिया गया। इसलिए अपीलें.

न्यायालय ने अपील स्वीकार करते हुए अभिनिर्धारित किया:

1. किसी कंपनी के समापन के लिए आवेदन करने का अधिकार उपलब्ध है, बशर्ते कि आवेदक कंपनी की कुल होल्डिंग शेयर में 10% शेयर रखने के संबंध में कंपनी अधिनियम 1956 की धारा 397, 398 और 399 के तहत अपेक्षित आवश्यकताओं को पूरा करता हो। यह आवश्यक नहीं है कि याचिकाकर्ता (ओं) को इसे व्यक्तिगत रूप से धारण करना चाहिए। इस तरह की समापन याचिका अन्य शेयरधारकों की सहमति प्राप्त करने के बाद भी दायर की जा सकती है, ताकि कुल शेयरधारिता में से 10 प्रतिशत की कुल हिस्सेदारी की आवश्यकता को पूरा किया जा सके। [पैरा 6] [720-सी-ई]

2. परिसमापन आवेदन धारा 397 के तहत विचारणीय है, जहां कंपनी के मामलों को ऐसे तरीके से संचालित किया जा रहा है जो सार्वजनिक हित के लिए प्रतिकूल है, या ऐसे

तरीके से जो कंपनी के किसी भी सदस्य या सदस्यों के संबंध में दमनकारी है। [पैरा 7] [720-ई-एफ]

एम.एस.डी.सी. राधारमण बनाम एम.एस.डी. चन्द्रशेखर राजा और अन्य, एआईआर 2008 एससी 1738: 2008 (5) एससीआर 182 – पर भरोसा व्यक्त किया ।

3. अधिनियम 1956 की धारा 399, न तो स्पष्ट रूप से और न ही निहितार्थ से, यह आवश्यक है कि इसमें दी जाने वाली सहमति किसी सदस्य द्वारा व्यक्तिगत रूप से दी जानी चाहिए, क्योंकि यह ऐसे शेयरधारक के पावर ऑफ अटॉर्नी धारक द्वारा भी दी जा सकती है। इसके अलावा, मामले की अनदेखी और निर्वाह के संबंध में सहमति का मुद्दा व्यापक सहमति के दृष्टिकोण के आधार पर तय किया जाना चाहिए। इसका निर्णय ऐसी सहमति के स्वरूप के आधार पर किया जाना चाहिए, न कि उसके सार के आधार पर। इसलिए, लिखित सहमति की कोई आवश्यकता नहीं है, या यहां तक कि सहमति को कंपनी याचिका के साथ संलग्न करने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसी सहमति शेयरधारक के पावर ऑफ अटॉर्नी धारक द्वारा भी दी जा सकती है। यदि शेयरधारक, जिसने शुरू में 1/10 शेयर होल्डिंग की आवश्यकता को पूरा करने में मदद के लिए कंपनी की याचिका दायर करने की सहमति दी थी, अपने द्वारा रखे गए शेयरों को स्थानांतरित कर देता है, या शेयरधारक नहीं रह जाता है, तो इससे याचिका की पोषणीयता और निरंतरता पर कोई असर नहीं पड़ेगा। [पैरा 10 और 11] [722-सी-ई; 723-बी-सी]

पी. पुन्नैया और अन्य बनाम जेपोर शुगर कंपनी लिमिटेड और अन्य एआईआर 1994 एससी 2258; जे. पी. श्रीवास्तव एंड संस प्रा. लिमिटेड और अन्य बनाम मैसर्स ग्वालियर शुगर कंपनी लिमिटेड और अन्य एआईआर 2005 एससी 83: 2004 (5) पूरक एससीआर 648 - पर भरोसा व्यक्त किया।

4. जहां कंपनी याचिका अन्य शेयरधारकों की सहमति से दायर की जाती है, उसे प्रतिनिधि क्षमता में माना जाना चाहिए, और इसलिए, कंपनी याचिका में मूल याचिकाकर्ता द्वारा वापसी के लिए आवेदन करने से अधिनियम 1956 की धारा 397 या 398 के तहत याचिका गैर-अस्तित्व, या अपोषणीय नहीं होगी। अन्य व्यक्ति, यानी रचनात्मक पक्ष, जो याचिका दायर करने के लिए सहमति प्रदान करते हैं, वास्तव में उक्त मामले में याचिकाकर्ता के रूप में स्थानांतरित होने के हकदार हैं। इसके अतिरिक्त, यदि याचिकाकर्ता अपनी याचिका के साथ आगे बढ़ना नहीं चाहता है, तो याचिका को खारिज करना हमेशा अदालत पर निर्भर नहीं होता है। यदि अदालत चाहे तो याचिका को खारिज किए बिना योग्यता के आधार पर उस पर विचार कर सकती है। [पैरा 11] [722-एफ-एच; 723-ए-बी]

राजमुंदरी इलेक्ट्रिक सप्लाई कॉर्पोरेशन लिमिटेड, इसके उपाध्यक्ष अप्पन्ना रंगा राव बनाम आंध्र राज्य एआईआर 1954 एससी 251: 1954 एससीआर 779; मैसर्स डेल और कैरेंगटन इंवेस्टमेंट (पी) लिमिटेड और अन्य बनाम पी.के. प्रतापन और अन्य एआईआर 2005 एससी 1624: 2004 (4) पूरक एससीआर 334 - पर भरोसा व्यक्त किया।

5. खंडपीठ ने तर्क दिया है कि यदि किसी पक्ष को अपील से हटने की अनुमति दी जाती है, और यह स्पष्ट है कि ऐसे पक्ष की अनुपस्थिति में, याचिका स्वयं सुनवाई योग्य नहीं हो सकती है, तो पूरी याचिका और/या अपील विफल होगी और कानून के तहत कार्रवाई नहीं की जा सकती। कंपनी की याचिका की गुणावगुण के आधार पर विचारणीयता के मुद्दे की जांच किए बिना खंडपीठ द्वारा ऐसी टिप्पणी की गई है। [पैरा 14] [724-बी-डी]

6. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में, इस न्यायालय के दिनांक 26.4.1996 के आदेश के प्रभाव पर विचार नहीं किया, और खंडपीठ ने दिनांक 16.11.1993 और 18.11.1993 के पहले के आदेशों को अनुचित महत्व देते हुए, इसे अमान्य कर दिया, इस

कारण से कि इस न्यायालय ने 26.4.1996 को एक आदेश पारित करते समय, उन आदेशों को रद्द नहीं किया, और इसलिए, वे बरकरार रहे। इसके अलावा, न्यायालय ने इस बात की जांच नहीं की कि क्या प्रतिनिधि क्षमता में दायर की गई याचिका को अदालत के समक्ष पक्ष द्वारा एकतरफा वापस लिया जा सकता है, और आदेश XXIII नियम 1 (5) सीपीसी पर क्या प्रभाव पड़ेगा, जो यह प्रावधान करता है कि अदालत किसी पक्ष को अन्य पक्षो की सहमति के बिना इस तरह के मामले को वापस लेने की अनुमति नहीं दे सकती है, होगा। [पैरा 19] [726-ए-सी]

7. प्रतिनिधि क्षमता में दायर किया गया मुकदमा वादी के अलावा अन्य व्यक्तियों का भी प्रतिनिधित्व करता है, और ऐसे वादी को उस श्रेणी के लोगों से परामर्श किए बिना वापसी का आदेश प्राप्त नहीं करना चाहिए जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए, अदालत को आम तौर पर एकतरफा वापसी की अनुमति नहीं देनी चाहिए, बल्कि वादी को लिखित रूप में अन्य व्यक्तियों की सहमति प्राप्त करने की सलाह दी जानी चाहिए, यहां तक कि प्रकाशन द्वारा प्रतिस्थापित सेवा को प्रभावित करने के माध्यम से भी, और इस स्थिति में कि कोई आपत्ति नहीं उठाई जाती है। न्यायालय ऐसा आदेश पारित कर सकता है। यदि न्ययालय वापस लेने का ऐसा आदेश पारित करता है, यह जानते हुए कि यह एक प्रतिनिधि क्षमता में एक वाद से निपट रहा है, वादी द्वारा प्रतिनिधित्व किए जा रहे व्यक्तियों को इसके बारे में जागरूक किए बिना, उक्त आदेश एक अनुचित आदेश होगा। इसलिए ऐसा आदेश क्षेत्राधिकार के बिना है। [पैरा 20] [726-डी-एफ]

एमटी. राम देई बनाम एमटी. बहू रानी एआईआर 1922 पट. 489; एमटी. जयमाला कुँवर और अन्य बनाम कलेक्टर ऑफ सहारनपुर और अन्य एआईआर 1934 ऑल. 4; द एशियन एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम माधोलाल सिंधु और अन्य एआईआर 1950 बॉम 378 – संदर्भित किया गया।

8. खंडपीठ द्वारा लिए गए विचार ने सुप्रीम कोर्ट के दिनांक 26.4.1996 के आदेश को अमान्य कर दिया है। सुप्रीम कोर्ट ने उपस्थित उत्तरदाताओं को सुनने के बाद दिए गए सुझावों और उनके द्वारा दी गई रियायतों के आधार पर यह आदेश पारित किया था। वास्तव में, उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित वकील द्वारा यह सुझाव दिया गया था कि यदि अपीलकर्ता उच्च न्यायालय में ऐसी अपील करता है, तो उत्तरदाताओं को परिसीमा के आधार पर कोई आपत्ति नहीं उठानी चाहिए, और वे सहमति देने वाले शेयरधारकों के सुने जाने के आधार पर भी आपत्ति नहीं करेंगे। इस प्रकार, यह स्पष्ट करता है, कि एकल न्यायाधीश के दिनांक 2.2.1995 के फैसले के खिलाफ अपील के रखरखाव का अधिकार, वास्तव में यह उत्तरदाताओं द्वारा स्वयं की गई एक पेशकश थी, जिसमें अपीलकर्ता की सीमा और अधिकार क्षेत्र के संबंध में उनके द्वारा एक और वचन दिया गया था, यह बताते हुए कि इसे नहीं उठाया जाएगा। उन्हें जो दिया गया था, वह केवल यह तर्क उठाने की अनुमति थी कि, कंपनी अदालत के समक्ष कंपनी याचिका दायर करने की वास्तविक तिथि के अनुसार, याचिकाकर्ताओं के पास सहमति वाले पक्षों के साथ, कंपनी का कुल हिस्सेदारी में से 10 प्रतिशत हिस्सेदारी थी। इस न्यायालय की उपरोक्त शर्तों ने यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि यह न्यायालय इस तथ्य से पूरी तरह से अनभिज्ञ था कि खंडपीठ द्वारा अपील वापस लेने की अनुमति देते हुए और आगे उक्त आदेशो को रिकॉल करने के अपीलार्थी के प्रार्थना-पत्र को खारिज करते हुये दो आदेश पारित किये गये थे। यदि इस न्यायालय ने उक्त आदेशों को रद्द नहीं किया, तो अपीलकर्ता को 2.2.1995 के खंडपीठ के फैसले और आदेश के खिलाफ अपील दायर करने के लिए कहने का कोई उद्देश्य नहीं था। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश द्वारा, उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय द्वारा की गई पूरी कवायद को निरर्थक बना दिया है। [पैरा 22] [728-सी-एच; 729-ए]

9. यह कहना सही नहीं है कि वाक्यांश "जहाँ तक लागू हो", सीपीसी के आवेदन को बाहर करता है जहाँ एक विशेष प्रक्रिया नियमों में ही निर्धारित है, और जैसा कि 1959 के नियमों के नियम 88(2) में प्रावधान है कि कोई भी वापसी नहीं होगी। केवल न्यायालय की अनुमति से ही अनुमति दी जाएगी, आगे कोई आवश्यकता नहीं मानी जा सकती। [पैरा 24] [729-ई-एफ]

सिटी इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट बोर्ड, बैंगलोर बनाम एच नारायणैया आदि आदि एआईआर 1976 एससी 2403: 1977 (1) एससीआर 178; मकतूल सिंह बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1999 एससी 1131 1999 (1) एससीआर 1156 पर भरोसा किया गया।

10. यदि उच्च न्यायालय के खंडपीठ द्वारा दी गई व्याख्या को स्वीकार कर लिया जाता है, तो यह न केवल अपीलकर्ता को उपचारहीन बना देगा, जिसके कहने पर इस न्यायालय ने दिनांक 26.4.1996 को आदेश पारित किया था, बल्कि कानूनी में सन्निहित सिद्धांत को भी विफल कर देगा। कहावत, 'उबि जे इबि इदेम रेमेडियम' (जहां अधिकार है, वहां उपाय है)। [पैरा 28] [730-बी-सी]

धन्नालाल बनाम कलावतीबाई और अन्य। एआईआर 2002 एससी 25 2002 (1) पूरक एससीआर 19; श्रीमती गंगा बाई बनाम विजय कुमार एवं अन्य एआईआर 1974 एससी 1126: 1974 (3) एससीआर 882- पर भरोसा व्यक्त किया।

11. यह प्रतिवादी नंबर 1 था जिसने इस न्यायालय को कंपनी न्यायालय के आदेश के खिलाफ अपील दायर करने की स्वतंत्रता देते हुए अपीलकर्ता एच द्वारा दायर अपील का निपटान करने का सुझाव दिया था। इसलिए, प्रतिवादी नंबर 1 के लिए इस तथ्य के संबंध में मुद्दे को उठाना स्वीकार्य नहीं था कि चूंकि सुप्रीम कोर्ट ने उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित दिनांक 16.11.1993 और 18.11.1993 के आदेशों को रद्द नहीं किया था। वे बरकरार रहे थे। इस तरह का तर्क प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा खंडपीठ के समक्ष नहीं

दिया जा सकता था, कानूनी कहावत के मद्देनजर, 'एक्टस क्यूरीए नेमिनेम ग्रेवाबिट यानि कि न्यायालय का कोई भी कार्य किसी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा'। इस न्यायालय के दिनांक 26.4.1996 के आदेश की यदि सख्त शाब्दिक व्याख्या की जाए तो अपीलकर्ता को उपचार के अधिकार से वंचित कर दिया जाएगा, जो कि कानून में स्वीकार्य नहीं है। [पैरा 29] [730-ई-जी; 731-सी]

जयलक्ष्मी कोएल्हो बनाम ओसवाल्ड जोसेफ कोएल्हो एआईआर 2001 एससी 1084: 2001 (2) एससीआर 207; रामेश्वरलाल बनाम नगर परिषद, टोंक एवं अन्य। (1996) 6 एससीसी 100: 1996 (5) पूरक। एससीआर 227 - पर भरोसा व्यक्त किया।

12. उच्च न्यायालय के दिनांक 24.11.2003 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द किया जाता है और इस न्यायालय के दिनांक 26.4.1996 के निर्णय का कड़ाई से पालन करते हुए मामलों को उच्च न्यायालय द्वारा नए सिरे से तय करने के लिए भेजा जाता है। मामले पर नए सिरे से फैसला करते समय, खंडपीठ उच्च न्यायालय के 16.11.1993 और 18.11.1993 के पहले के फैसलों पर ध्यान नहीं देगी। [पैरा 30] [731-ई-एफ]

प्रकरण कानून संदर्भ:

2008 (5) एससीआर 182 भरोसा व्यक्त किया पैरा 7

1954 एससीआर 779 भरोसा व्यक्त किया पैरा 8

2004 (4) सप्ल. एससीआर 334 भरोसा व्यक्त किया पैरा 9

एआईआर 1994 एससी 2258 भरोसा व्यक्त किया पैरा 10

2004 (5) पूरक एससीआर 648 भरोसा व्यक्त किया पैरा 10

एआईआर 1922 पट. 489 भरोसा व्यक्त किया पैरा 22

एआईआर 1934 ऑल 4 भरोसा व्यक्त किया पैरा 22

एआईआर 1950 बॉम. भरोसा व्यक्त किया पैरा 22

1977 (1) एससीआर 178 भरोसा व्यक्त किया पैरा 26

1999 (1) एससीआर 1156 भरोसा व्यक्त किया पैरा 27

2002 (1) पूरक। एससीआर 19 भरोसा व्यक्त किया पैरा 28

1974 (3) एससीआर 882 भरोसा व्यक्त किया पैरा 28

2001 (2) एससीआर 207 भरोसा व्यक्त किया पैरा 29

1996 (5) पूरक। एससीआर 227 भरोसा व्यक्त किया पैरा 29

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 361-362/2005

एपीओ संख्या 346 और 347 /1996 की दो अपीलों में कलकत्ता उच्च न्यायालय के दिनांक 24.11.2003 के निर्णय और आदेश से।

अपीलकर्ता की ओर से बिजय कुमार जैन।

अशोक एच. देसाई, के. राजीव, कुलदीप एस. परिहार, एच.एस. परिहार, राधा रंगास्वामी, प्रतिवादियों की ओर से ।

न्यायालय का निर्णय डॉ. बी. एस. चौहान, न्यायाधिपति द्धारा सुनाया गया।

1. ये अपीलें एपीओ संख्या 346 और 347 में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और अंतिम आदेश दिनांक 24.11.2003 के खिलाफ दायर की गई हैं, जिसके माध्यम से उच्च न्यायालय ने कंपनी अधिनियम, 1956 (इसके बाद 'अधिनियम 1956' के

रूप में संदर्भित) की धारा 397 और 398 के तहत दायर कंपनी याचिका को बनाए रखने के लिए अपीलकर्ता के दावे को खारिज कर दिया था।

2. इन अपीलों को जन्म देने वाले तथ्य और परिस्थितियाँ इस प्रकार हैं:

ए. श्री एस.के. रॉय (प्रतिवादी नंबर 2) ने प्रतिवादी नंबर 1 कंपनी के 30,000 शेयर खुद को और स्वंय के रिश्तेदारो को जारी और आवंटित किए, और उसमें बहुसंख्यक शेयरधारक होने के नाते, प्रतिवादी-कंपनी पर नियंत्रण हासिल कर लिया।

बी. श्री अजीत कुमार चटर्जी (3.66% शेयर) और श्री अर्घ्य कुसुम चटर्जी (1.01% शेयर) ने मैसर्स भगवती डेवलपर्स प्रा. लिमिटेड (4.78% शेयर) (बाद में 'अपीलकर्ता' के रूप में संदर्भित) और श्री आर.एल. गग्गर (7.61% शेयर)की सहमति से कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष अधिनियम 1956 की धारा 397 और 398 के तहत कंपनी याचिका संख्या 222 / 1991 गलत प्रबंधन और उत्पीड़न का आरोप लगाते हुये दायर की।

सी. प्रतिवादी नंबर 2 ने रखरखाव के प्रारंभिक मुद्दे को उठाते हुए उक्त कंपनी याचिका का विरोध किया, जिसमें कहा गया कि याचिकाकर्ताओं और सहमति देने वाली पक्षकारो द्वारा रखे गए वैध शेयरों का मूल्य कुल शेयरधारिता के 10 प्रतिशत से कम था, और इस प्रकार, याचिका स्वयं सुनवाई योग्य नहीं थी। कंपनी कोर्ट के न्यायाधीश ने दिनांक 13/14.1.1992 के आदेश के तहत उक्त कंपनी की याचिका को विचारणीय नहीं मानते हुए खारिज कर दिया, मामले के गुण-दोष पर विचार किए बिना, उपरोक्त प्रारंभिक आपत्ति को स्वीकार कर लिया।

डी. श्री अजीत कुमार चटर्जी और श्री अर्घ्य कुसुम चटर्जी, दोनों याचिकाकर्ताओं ने कलकत्ता उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के समक्ष 1992 की क्रमशः संख्या 40 और 35 की दो अपीलें दायर कीं, जिसमें कंपनी की याचिका को रखरखाव के आधार पर खारिज करने को चुनौती दी गई थी। दोनों अपीलों को समेकित कर एक साथ सुना गया।

ई. 16.11.1993 को, श्री अजीत कुमार चटर्जी कंपनी के निदेशक मंडल में शामिल हुए और अपील वापस लेने के लिए आवेदन दायर किया। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 16.11.1993 के आदेश के तहत उक्त आवेदनों को स्वीकार कर लिया और उनकी अपील को वापस ले लिया हुआ मानते हुए खारिज कर दिया। श्री अर्घ्य कुसुम चटर्जी द्वारा दायर एक समान आवेदन की अनुमति देते हुए डिवीजन बेंच द्वारा 18.11.1993 को एक समान आदेश पारित किया गया था, और इसलिए, उनकी अपील को भी वापस ले लिया गया मानकर खारिज कर दिया गया था।

एफ. अपीलकर्ता ने उक्त अपीलों को खारिज करने के आदेश को वापस लेने और प्रोफार्मा प्रतिवादी के रूप में चटर्जी बंधुओं के स्थानांतरण के उद्देश्य से 22.12.1993 को खंडपीठ के समक्ष दो आवेदन दायर किए, जबकि अपीलकर्ता को एकमात्र अपीलकर्ता के रूप में प्रतिस्थापित किया, खंडपीठ ने दिनांक 2.2.1995 के आदेश के तहत एक विस्तृत निर्णय द्वारा उक्त आवेदन को खारिज कर दिया, अपीलकर्ता को एक अजनबी के रूप में लेबल किया जिसका कोई भी अधिकार नहीं था, और यह देखते हुए कि चूंकि अपील अब लंबित नहीं थी, पक्षकारो के स्थानान्तरण का सवाल ही नहीं उठता है। इसके अलावा, यह देखा गया कि इस तरह का आवेदन दाखिल करने में अत्यधिक देरी हुई थी।

जी. व्यथित अपीलकर्ता ने दिनांक 2.2.1995 के आदेश को चुनौती देते हुए इस अदालत के समक्ष एस.एल.पी.(सी) संख्या 19193 और 19217 / 1995 प्रस्तुत की। इस न्यायालय ने उक्त याचिकाओं पर विचार किया, अनुमति दी और दिनांक 26.4.1996 के निर्णय और आदेश के माध्यम से अपीलों का निपटारा किया, यह देखते हुए कि अपीलकर्ता विद्वान एकल द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 13/14.1.1992 को चुनौती देते हुए स्वतंत्र अपील कर सकता है। न्यायाधीश ने आगे कहा कि यदि ऐसी कोई अपील वास्तव में दायर की गई थी, तो उसे सीमा या लोकस स्टैंडी के आधार पर डिवीजन बेंच द्वारा खारिज नहीं किया जाएगा। हालाँकि, प्रतिवादी नंबर 2 के लिए यह तर्क देना खुला होगा

कि जिस आधार पर कंपनी कोर्ट के न्यायाधीश ने कंपनी की याचिका को खारिज कर दिया था, वह वास्तव में उचित था, यानी प्रतिवादी कंपनी कोर्ट के न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश का बचाव कर सकता है। इसके अलावा, अपीलकर्ता द्वारा दायर अपीलों पर चटर्जी बंधुओं द्वारा अपील वापस लेने के प्रभाव की भी जांच की जाएगी। इसके अतिरिक्त, चटर्जी बंधुओं द्वारा पसंद की गई वापस ली गई अपीलों को खारिज करना, अपीलकर्ता के ऐसे तर्कों को उठाने के रास्ते में नहीं आएगा जो उसके लिए कानूनी रूप से स्वीकार्य और उपलब्ध हैं। इस न्यायालय ने योग्यता के आधार पर कोई राय व्यक्त किए बिना उक्त अपीलों का निपटारा कर दिया।

एच. इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.4.1996 के अनुसरण में, अपीलकर्ता ने अपील संख्या 346 और 347 /1996 को प्राथमिकता दी, जिसे दिनांक 24.11.2003 के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है।

इसलिये यह अपीले।

3. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री सुनील कुमार गुप्ता ने प्रस्तुत किया है कि उच्च न्यायालय, अपीलकर्ता द्वारा दायर अपील को खारिज करते हुए, इस न्यायालय के दिनांक 26.4.1996 के फैसले और आदेश की सराहना करने में विफल रहा, जिसमें इस न्यायालय ने माना था कि परिसीमा के मुद्दों और अपीलकर्ता के अधिकार क्षेत्र पर सवाल नहीं उठाया जाएगा। इसलिए, उच्च न्यायालय की खंडपीठ को अधिकार क्षेत्र के मुद्दे पर अपीलकर्ताओं को अपमानित नहीं करना चाहिए था। चटर्जी बंधुओं ने अपनी अपील वापस ले ली थी, और इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के आदेश की सही परिप्रेक्ष्य में व्याख्या करने में गलती की है, और इसलिए, अपीलकर्ता को सुधारहीन बना दिया है। भले ही उक्त कंपनी याचिका वापस ले ली गई हो, अपीलकर्ता जिसकी सहमति से कंपनी याचिका दायर की गई थी, निश्चित रूप से उक्त कंपनी याचिका को पुनर्जीवित करने और कंपनी कोर्ट के न्यायाधीश के आदेश को

डिवीजन बेंच के समक्ष चुनौती देने का हकदार था। खंडपीठ के लिए अपीलकर्ता द्वारा दायर आवेदनों को मामले की योग्यता पर ध्यान दिए बिना, केवल पिछले खंडपीठ के फैसले और दिनांक 16.11.1993 के आदेश पर भरोसा करते हुए खारिज करना स्वीकार्य नहीं था। उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए इस तरह के कदम ने इस न्यायालय के दिनांक 26.4.1996 के आदेश को निरर्थक बना दिया है। अत: अपीलें स्वीकार किये जाने योग्य हैं।

4. इसके विपरीत, प्रतिवादीगणो की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री अशोक एच. देसाई, श्री भास्कर पी. गुप्ता, श्री अभिजीत चटर्जी, श्री जयदीप गुप्ता ने अपील का विरोध करते हुए कहा कि चटर्जी बंधुओं ने अपनी दोनों अपीलो के साथ साथ कंपनी याचिका संख्या 222/1991 भी वापस ले ली हैं। इसलिए, अपीलकर्ता के लिए पक्षकार और स्थानान्तरण के लिए आवेदन दायर करना स्वीकार्य नहीं था। यह स्पष्ट है कि ऐसे आवेदनों पर विचार नहीं किया जा सकता जहां कंपनी की याचिका ही लंबित नहीं है। इसके अलावा, विद्वान एकल न्यायाधीश ने सही माना था कि वर्तमान अपीलकर्ता और श्री आर.एल. गग्गर, सहमति देने वाले पक्ष, न तो ऐसी स्वीकृति देने के लिये योग्य थे और न ही सक्षम थे, क्योंकि उनके पास वैध शेयर नहीं थे। इसके अलावा, उनमें से एक ने पावर ऑफ अटॉर्नी धारक के माध्यम से सहमति दी थी, जो कानून के अनुसार नहीं है। इस न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 26.4.1996 द्वारा उच्च न्यायालय के दिनांक 16.11.1993 के निर्णय और आदेश को रद्द नहीं किया। इस प्रकार, उच्च न्यायालय द्वारा अपने आक्षेपित निर्णय में इस पर उचित ही भरोसा किया गया है। अपीलों में कोई दम नहीं है और इसलिए ये खारिज किए जाने योग्य हैं।

5. हमने पक्षों के विद्वान वकील द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

6. किसी कंपनी के समापन के लिए आवेदन करने का अधिकार उपलब्ध है, बशर्ते कि आवेदक कुल शेयरधारिता में 10% शेयर रखने के संबंध में कंपनी अधिनियम 1956 की धारा 397, 398 और 399 के तहत अपेक्षित आवश्यकताओं को पूरा करता हो। यह आवश्यक नहीं है कि याचिकाकर्ता(ओं) को इसे व्यक्तिगत रूप से धारण करना चाहिए। इस तरह की समापन याचिका अन्य शेयरधारकों की सहमति प्राप्त करने के बाद भी दायर की जा सकती है, ताकि कुल शेयरधारिता में से 10 प्रतिशत की कुल हिस्सेदारी की आवश्यकता को पूरा किया जा सके।

7. उक्त आवेदन धारा 397 के तहत विचारणीय है, जहां कंपनी के मामलों को ऐसे तरीके से संचालित किया जा रहा है जो सार्वजनिक हित के लिए प्रतिकूल है, या ऐसे तरीके से जो कंपनी के किसी भी सदस्य या सदस्यों के संबंध में दमनकारी है। (द्धारा : एम.एस.डी.सी. राधारमणन बनाम एम.एस.डी. चन्द्रशेखर राजा एवं अन्य, एआईआर 2008 एससी 1738)

8. राजमुंदरी इलेक्ट्रिक सप्लाई कॉर्पोरेशन लिमिटेड इसके उपाध्यक्ष द्धारा, अप्पन्ना रंगा राव बनाम आंध्र राज्य, एआईआर 1954 एससी 251 में, यह न्यायालय अधिनियम 1956 की धारा 397 और भारतीय कंपनी अधिनियम, 1913 की धारा 153 (सी) के तहत एक मामले से निपटते हुए, जो अधिनियम 1956 की धारा 397 के प्रावधानों के अनुरूप थे, में यह माना गया कि क्या याचिकाकर्ता ने कुल शेयरों का 1/10 वां हिस्सा की होल्डिंग की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कंपनी के सदस्यों की सहमति प्राप्त की थी। इस बात के आलोक में जांच की जानी है कि क्या ऐसी संख्या वास्तव में प्रस्तुति की वास्तविक तिथि पर प्राप्त की गई थी और बनाए रखी गई थी, और इस घटना में कि कोई सदस्य बाद में सहमति वापस ले लेता है, इससे आवेदक-याचिकाकर्ता के आवेदन के साथ आगे बढ़ने के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, या गुण-दोष के आधार पर इसका निपटान करना न्यायालय का अधिकार क्षेत्र है।

9. मैसर्स डेल और कैरिंगटन इंवेस्टमेंट (पी) लिमिटेड और अन्य बनाम पी. के. प्रतापन और अन्य, एआईआर 2005 एससी 1624 में, इस न्यायालय ने रिज़र्व बैंक आदि की अनुमति के बिना शेयरों के हस्तांतरण के मुद्दे से निपटा, और निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

> "सुने जाने के अधिकार के सवाल पर प्रतिवादी के विद्वान वकील ने राजमुंदरी इलेक्ट्रिक सप्लाई कॉरपोरेशन लिमिटेड बनाम ए नागेश्वर राव और अन्य, एआईआर 1956 एससी 213 का हवाला दिया, जिसमें यह माना गया था कि याचिका की वैधता का आकलन तथ्यों से किया जाना चाहिए। जैसा कि वे इसकी प्रस्तुति के समय थे, और एक याचिका जो प्रस्तुत होने पर वैध थी, उसकी प्रस्तुति के बाद की घटनाओं के कारण विचारणीय नहीं रह सकती। एस. वरदराजन बनाम वेंकटेश्वर सॉल्वेंट एक्सट्रैक्शन (पी) लिमिटेड और अन्य (1994) 80 कंपनी प्रकरण 693 में, आवेदक और चार अन्य द्वारा कंपनी अधिनियम की धारा 397 और 398 के तहत एक याचिका दायर की गई थी। याचिका के लंबित रहने के दौरान, चार अन्य व्यक्ति जो याचिका दायर करने के समय आवेदक के साथ शामिल हुए अपने शेयर बेच दिए, जिससे कंपनी के शेयरधारक नहीं रहे। यह माना गया कि आवेदन को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि चार शेयरधारक कंपनी के शेयरधारक नहीं रह गए हैं। योग्यता शेयरों के बारे में आवश्यकता केवल कार्यवाही शुरू किये जाने के प्रासंगिक है। जवाहर सिंह बिक्रम सिंह बनाम शारदा तलवार (1974) 44 कंपनी मामले 552 में, दिल्ली उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने माना कि धारा 397/398 के तहत याचिका के प्रयोजनों के लिए यह केवल आवश्यक था कि जो सदस्य पहले से ही न्यायालय के

समक्ष रचनात्मक रूप से उपस्थित थे, कार्यवाही में लगातार रहने चाहिये। यह एक ऐसा मामला है जिसमें याचिका दायर करने वाले याचिकाकर्ता की याचिका लंबित रहने के दौरान ही मृत्यु हो गई। याचिका दायर करते समय उन्होंने कंपनी के अपेक्षित संख्या में शेयरधारकों की सहमति प्राप्त कर ली थी, उनमें उनकी पत्नी भी थीं। न्यायालय ने आगे कहा कि चूंकि याचिकाकर्ता की पत्नी पहले से ही मूल कार्यवाही में रचनात्मक रूप से एक याचिकाकर्ता थी, इसलिए उसने लिखित रूप में सहमति दी थी, वह अपने पति के स्थान पर याचिकाकर्ता के रूप में स्थानांतरित होने की हकदार थी।" (जोर दिया गया)

10. अधिनियम 1956 की धारा 399, न तो स्पष्ट रूप से और न ही निहितार्थ से, यह आवश्यक है कि इसमें दी जाने वाली सहमति किसी सदस्य द्वारा व्यक्तिगत रूप से दी जानी चाहिए, क्योंकि यह ऐसे शेयरधारक के पावर ऑफ अटॉर्नी धारक द्वारा भी दी जा सकती है। इसके अलावा, मामले से बचने और अस्तित्व के संबंध में सहमति के मुद्दे को व्यापक सर्वसम्मति दृष्टिकोण के आधार पर तय किया जाना चाहिए। इसका निर्णय ऐसी सहमति के स्वरूप के आधार पर किया जाना चाहिए, न कि उसके सार के आधार पर। इसलिए, लिखित सहमति की आवश्यकता है, या यहां तक कि सहमति को कंपनी याचिका के साथ संलग्न किया जाना चाहिए। (द्धारा: पी. पुन्नलाह और अन्य बनाम जेपोर शुगर कंपनी लिमिटेड और अन्य, एआईआर 1994 एससी 2258; और जे. पी. श्रीवास्तव एंड संस प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम मेसर्स ग्वालियर शुगर कंपनी लिमिटेड एवं अन्य, एआईआर 2005 एससी 83)

11. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, मौजूदा मामले को कानून के पूर्वोक्त स्थापित प्रस्तावों के आलोक में विचार करने की आवश्यकता है, जो यह प्रदान करता है कि जहां

कंपनी की याचिका अन्य शेयरधारकों की सहमति से दायर की जाती है, उसे उसी के अनुसार एक प्रतिनिधि क्षमता माना जाना चाहिए, और इसलिए, कंपनी याचिका में मूल याचिकाकर्ता द्वारा वापसी के लिए आवेदन करने से अधिनियम 1956 की धारा 397 या 398 के तहत याचिका अस्तित्वहीन या गैर-पोषणीय योग्य नहीं हो जाएगी। अन्य व्यक्ति, यानी रचनात्मक पक्ष जो याचिका दायर करने के लिए सहमति प्रदान करते हैं, वास्तव में उक्त मामले में याचिकाकर्ता के रूप में स्थानांतरित होने के हकदार हैं। इसके अतिरिक्त, यदि याचिकाकर्ता अपनी याचिका पर आगे बढ़ना नहीं चाहता है, इसलिए याचिका खारिज करना हमेशा अदालत के लिए बाध्य नहीं होता है। यदि अदालत चाहे तो याचिका को खारिज किए बिना योग्यता के आधार पर उस पर विचार कर सकती है। इसके अलावा, शेयरधारक को स्वयं लिखित में सहमति देने की कानून में कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसी सहमति शेयरधारक के पावर ऑफ अटॉर्नी धारक द्वारा भी दी जा सकती है। यदि शेयरधारक, जिसने शुरू में 1/10 शेयर होल्डिंग की आवश्यकता को पूरा करने में मदद के लिए कंपनी याचिका दायर करने की सहमति दी थी, अपने द्वारा रखे गए शेयरों को स्थानांतरित कर देता है, या शेयरधारक नहीं रह जाता है, तो इससे याचिका की पोषणीयता और निरंतरता पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

12. कंपनी कोर्ट के न्यायाधीश ने दिनांक 13/14.1.1992 के फैसले और आदेश के तहत गुणावगुण के आधार पर याचिका खारिज कर दी। अपीलें की गईं, और पहली अपील श्री अजीत कुमार चटर्जी द्वारा दिनांक 16.11.1993 के आदेश द्वारा वापस ले ली गई।

13. उक्त आवेदन का एक अन्य अपीलकर्ता श्री अर्घ्य कुसुम चटर्जी ने भी विरोध किया था। हालाँकि, अदालत ने निम्नलिखित आदेश पारित किया।

> "वर्तमान मामले में, चूंकि आवेदक नंबर 1 तस्वीर से बाहर हो जाता है और जहां तक अपीलकर्ता नंबर 1 को गैर-अभियोजन पक्ष के लिए

खारिज कर दिया जाता है, कंपनी की याचिका सुनवाई योग्य नहीं है और अपीलें भी सुनवाई योग्य नहीं हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए एक ही आधार है कि दो अन्य अपीलों के संबंध में, एक अपील की विचारणीयता के प्रश्न पर और दूसरी अपील की योग्यता के प्रश्न पर। यदि उस स्थिति में अपील की पोषणीयता पर कार्यवाही नहीं की जा सकती है दूसरी अपील पर भी आगे नहीं बढ़ा जा सका।

तदनुसार, जब अपील में कोई एक पक्ष अपील के साथ आगे बढ़ना नहीं चाहता है तो न्यायालय के पास उस पक्ष को उसकी इच्छा के विरुद्ध अपील जारी रखने के लिए बाध्य करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। इसके अलावा, यदि उस पक्ष को अपील से पीछे हटने की अनुमति दी जाती है और यदि यह स्पष्ट है कि उस पक्ष की अनुपस्थिति में याचिका स्वयं सुनवाई योग्य नहीं हो सकती है, उस स्थिति में पूरी याचिका और/या अपील विफल हो जाएगी और उस पर कानून के तहत कार्रवाई नहीं की जा सकेगी। तदनुसार, दोनों अपीलें खारिज की जाती हैं क्योंकि ऊपर बताए गए तथ्यों और परिस्थितियों के कारण आगे नहीं बढ़ाया जा सका। आज दायर किए गए आवेदनों को अनुमति दी जाती है।"

14. उपरोक्त आदेश यह स्पष्ट करता है कि खंडपीठ ने तर्क दिया है, कि यदि किसी पक्ष को अपील से हटने की अनुमति दी जाती है, और यह स्पष्ट है कि ऐसे पक्ष की अनुपस्थिति में, याचिका स्वयं सुनवाई योग्य नहीं हो सकती है, तो संपूर्ण याचिका और/या अपील विफल हो जाएगी, और कानून के तहत आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। कंपनी की याचिका की गुणवत्ता के आधार पर विचारणीयता के मुद्दे की जांच किए बिना खंडपीठ द्वारा ऐसी टिप्पणी की गई है।

15. एक अन्य चटर्जी भाई, अर्थात् श्री अर्घ्य कुसुम चटर्जी ने दिनांक 18.11.1993 के आदेश के तहत अपनी अपील संख्या 40 /1990 वापस ले ली। न्यायालय ने कहा, कि दिनांक 16.11.1993 के आदेश के मद्देनजर, कोई आदेश आवश्यक नहीं था, क्योंकि यदि एक अपील विफल हो जाती है, तो दूसरी को बरकरार नहीं रखा जा सकता है। अदालत ने आगे कहा:

> "हम इसे रिकॉर्ड पर रखते हैं कि अपीलकर्ता नंबर 2 उपरोक्त अपीलों के साथ आगे बढ़ना नहीं चाहता है और कंपनी अधिनियम की धारा 397 और 398 के तहत आवेदनों को खारिज करने की भी प्रार्थना करता है, जो विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश से खारिज कर दिए गए हैं तो, यह रिकॉर्ड में रखा गया है कि अपीलकर्ता संख्या 1 और 2 दोनों उन अपीलों के साथ आगे बढ़ना नहीं चाहते हैं जिन्हें हमारे द्वारा 16 नवंबर, 1993 को गैर-अभियोजन के कारण पहले ही खारिज कर दिया गया था।
>
> तदनुसार, दोनों आवेदनों का निपटारा किया जाता है।"

16. अपील वापस लेने के तुरंत बाद, वर्तमान अपीलकर्ता ने दिनांक 16.11.1993 और 18.11.1993 के उपरोक्त आदेशों को वापस लेने और अपीलकर्ता को चटर्जी बंधुओ को तरतीबी प्रतिवादीगण बनाते हुये, के स्थान पर स्थानांतरित करने के लिए दिनांक 22.12.1993 को एक प्रार्थना-पत्र दायर दिया। उक्त आवेदन को दिनांक 2.2.1995 के आदेश द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि याचिकाकर्ताओं, साथ ही रचनात्मक पक्षों, यानी सहमति देने वालों ने अपनी शेयर हिस्सेदारी वैध रूप से प्राप्त नहीं की थी। चटर्जी द्वारा दायर अपील वापस ले ली गई थी। इस प्रकार, ऐसी तथ्य-स्थिति के आलोक में, पक्षकारो को जोड़ने या स्थानांतरित करने के लिए किसी भी आवेदन पर विचार करने का सवाल ही नहीं उठता। अदालत ने वर्तमान मामले और राजमुंदरी के मामले के बीच

अंतर किया, यह देखते हुए कि मामले के तथ्य, राजमुंदरी के मामले से काफी अलग थे, क्योंकि बाद में, सहमति देने वाले पक्षकार ने अपनी सहमति वापस ले ली थी, जबकि यहां, रचनात्मक सहमति पक्ष ने अपना मामला वापस ले लिया है।

17. अपीलकर्ता ने व्यथित होकर, इस न्यायालय के समक्ष अपील की, जिसका निर्णय और आदेश दिनांक 26.4.1996 द्वारा निपटारा कर दिया गया, जिससे अपीलकर्ता को न्यायाधीश कंपनी न्यायालय के दिनांक 13/14.1.1992 के आदेश के खिलाफ एक स्वतंत्र अपील दायर करने की स्वतंत्रता मिल गई। इसके अलावा, उत्तरदाताओं के लिए यह तर्क देना भी खुला था कि कंपनी की याचिका कंपनी न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा दिए गए कारण के कारण सुनवाई योग्य नहीं थी, यानी अपेक्षित 10% शेयर होल्डिंग नहीं होने के कारण। उक्त आदेश दिनांक 26.4.1996, उत्तरदाताओं के आदेश पर, उनकी सहमति से पारित किया गया था, जिसमें कहा गया था कि वे सीमा के मुद्दों, या अपीलकर्ता के अधिकार क्षेत्र के मुद्दों को नहीं उठाएंगे।

18. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ता ने उन अपीलों को प्राथमिकता दी, जिन्हें दिनांक 24.11.2003 के आक्षेपित निर्णय और आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था, जो पहले खंडपीठ द्वारा की गई एक टिप्पणी पर निर्भर थी, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि, चटर्जी भाइयों ने अपनी अपीलें वापस ले ली थीं, और कंपनी की याचिका को कंपनी कोर्ट के न्यायाधीश द्वारा अयोग्य घोषित कर दिया गया था, इसके संबंध में किसी भी अपील पर विचार करने का सवाल ही नहीं उठता। चटर्जी द्वारा उक्त अपील वापस लेने के बाद, अपीलकर्ता को किसी भी तरह से मूल आवेदन के साथ आगे बढ़ने का कोई अधिकार नहीं था।

19. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में, इस न्यायालय के दिनांक 26.4.1996 के आदेश के प्रभाव पर विचार नहीं किया, और खंडपीठ के दिनांक 16.11.1993 और 18.11.1993 के पहले के आदेशों को अनुचित महत्व देते हुए, इसे अमान्य कर दिया, इस

कारण से कि इस न्यायालय ने 26.4.1996 को एक आदेश पारित करते समय, उन आदेशों को रद्द नहीं किया, और इसलिए, वे बरकरार रहे। इसके अलावा, न्यायालय ने इस बात की जांच नहीं की कि क्या प्रतिनिधि क्षमता में दायर की गई याचिका को अदालत के समक्ष पार्टी द्वारा एकतरफा वापस लिया जा सकता है, और आदेश XXIII नियम 1 (5) सीपीसी पर क्या प्रभाव पड़ेगा जो यह प्रदान करता है कि अदालत किसी भी पक्ष को अन्य पक्षों की सहमति के बिना इस तरह के मामले को वापस लेने की अनुमति नहीं दे सकती है।

20. अदालतों ने लगातार माना है कि प्रतिनिधि क्षमता में दायर किया गया मुकदमा वादी के अलावा अन्य व्यक्तियों का भी प्रतिनिधित्व करता है, और ऐसे वादी द्वारा उन लोगों की श्रेणी से परामर्श किए बिना वापसी का आदेश प्राप्त नहीं किया जाना चाहिए जिनका वह प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए, अदालत को आम तौर पर एकतरफा वापसी की अनुमति नहीं देनी चाहिए, बल्कि वादी को लिखित रूप में अन्य व्यक्तियों की सहमति प्राप्त करने की सलाह दी जानी चाहिए, यहां तक कि प्रकाशन द्वारा प्रतिस्थापित सेवा को प्रभावित करने के माध्यम से भी, और इस स्थिति में कि कोई आपत्ति नहीं उठाई जाती है, न्यायालय ऐसा आदेश पारित कर सकता है। यदि अदालत वापसी का ऐसा आदेश पारित करती है, यह जानते हुए कि वह प्रतिनिधि क्षमता में एक मुकदमे से निपट रही है, वादी द्वारा प्रतिनिधित्व किए जा रहे व्यक्तियों को इसके बारे में बताए बिना, उक्त आदेश एक अनुचित आदेश होगा। इसलिए ऐसा आदेश क्षेत्राधिकार के बिना है। (द्धारा: एमटी. राम देई बनाम एमटी. बहू रानी, एआईआर 1922 पट. 489; एमटी. जयमाला कुँवर और अन्य बनाम कलेक्टर ऑफ सहारनपुर और अन्य, एआईआर 1934 ऑल 4; और द एशियन एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम माधोलाल सिंधु एवं अन्य, एआईआर 1950 बॉम. 378.)

21. आक्षेपित आदेश के प्रासंगिक भाग निम्नानुसार प्रदान किए गए हैं:

I. अब विचारणीय प्रश्न यह आता है कि जब माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश को पढ़ने से यह स्थापित तथ्य स्पष्ट हो गया है कि चटर्जी बंधुओं की वापसी के बाद से मूल कंपनी याचिका का अस्तित्व नहीं था, क्या उक्त कंपनी याचिका से उत्पन्न होने वाली किसी भी अपील का अस्तित्व हो सकता है और हमारे विचार में इस महत्वपूर्ण प्रश्न का एकमात्र उत्तर नकारात्मक होना चाहिए।

।।. विद्वान एकल न्यायाधीश की टिप्पणी के अनुसार कंपनी की याचिका अपनी स्थापना के समय अमान्य और अप्रभावी थी, क्योंकि, चटर्जी भाइयों में से एक कंपनी अधिनियम के अर्थ में "सदस्य" नहीं था और साथ ही उनमें से एक सहमति देने वाले पक्षों अर्थात् आर.एल. गग्गर ने मूल आवेदन दाखिल करने के तुरंत बाद अपनी सहमति वापस ले ली थी और इन दोनों मामलों में, भले ही चटर्जी बंधुओं ने वापस नहीं लिया था, कंपनी की याचिका को कानून की नजर में वैध याचिका के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता था। हम पहले ही दर्ज कर चुके हैं कि बीडीपीएल द्वारा दायर याचिकाओं का निपटारा करते समय खंडपीठ ने एकल न्यायाधीश के इन निष्कर्षों को बरकरार रखा था और पुनरावृत्ति का जोखिम उठाते हुए भी यह कहा जा सकता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपना आदेश 26 अप्रैल, 1996 को दर्ज करते समय इस संबंध में खंडपीठ के निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं किया।

।।।. हमारा विचार है कि अपील के साथ-साथ मूल कंपनी याचिका से चटर्जी बंधुओं की वापसी की मान्यता के संबंध में पिछली खंडपीइ के 16 नवंबर, 1993 और 2 फरवरी, 1995 के आदेश को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने नहीं छुआ था और उस पृष्ठभूमि में वर्तमान अपीलकर्ता एक सहमति पक्ष होने के नाते, और वह सहमति भी कानूनी जांच से ऊपर नहीं है, मूल आवेदन के बिना वर्तमान अपील के साथ आगे बढ़ने का कोई कानूनी अधिकार नहीं है, जिसमें से अपील उत्पन्न हुई और जो कानून की नजर में गैर-मौजूद है।

और अंत में, इसे इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया:

IV. इस प्रकार, यहां ऊपर दर्ज किए गए कारणों से, हमारा विचार है कि वर्तमान अपीलें सुनवाई योग्य नहीं हैं और केवल इस आधार पर वर्तमान अपीलें खारिज की जा सकती हैं और मूल कंपनी याचिका की स्थिरता से संबंधित मामले के अन्य पहलू में प्रवेश करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

22. हमारी विनम्र राय में, खंडपीठ ने उपरोक्त दृष्टिकोण अपनाने में गंभीर गलती की है, क्योंकि यह इस न्यायालय के दिनांक 26.4.1996 के आदेश को अमान्य कर देता है। इस न्यायालय ने उपस्थित उत्तरदाताओं को सुनने के बाद दिए गए सुझावों और उनके द्वारा दी गई रियायतों के आधार पर आदेश पारित किया था। वास्तव में, उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित वकील द्वारा यह सुझाव दिया गया था कि यदि अपीलकर्ता अब भी उच्च न्यायालय में ऐसी अपील करता है, तो उत्तरदाताओं को सीमा के आधार पर कोई आपत्ति नहीं उठानी चाहिए, और वे सहमति देने वाले शेयरधारकों को सुने जाने के अधिकार के आधार पर आपत्ति नहीं करेगें। इस प्रकार, यह स्पष्ट करता है, कि विद्वान एकल न्यायाधीश दिनांक 2.2.1995 के फैसले के खिलाफ अपील के भरण-पोषण का अधिकार, वास्तव में उत्तरदाताओं द्वारा स्वयं की गई एक पेशकश थी, जिसके संबंध में उनके द्वारा एक और वचन प्रदान किया गया था, अपीलकर्ता की परिसीमा और अधिकार क्षेत्र के प्रश्न पर, यह कहते हुए कि इसे नहीं उठाया जाएगा। उन्हें जो दिया गया था, वह केवल यह तर्क उठाने की अनुमति थी कि, कंपनी अदालत के न्यायाधीश के समक्ष कंपनी याचिका दायर करने की वास्तविक तिथि के अनुसार, सहमति देने वाले पक्षों के साथ याचिकाकर्ताओं के पास कुल कंपनी की कुल हिस्सेदारी में से 10 प्रतिशत हिस्सेदारी थी।

इस न्यायालय की उपरोक्त शर्तों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह न्यायालय इस तथ्य से पूरी तरह से अनभिज्ञ था कि खंडपीठ द्वारा दो आदेश पारित किए गए थे, जिसमें अपील वापस लेने की अनुमति दी गई थी और उक्त आदेशो को वापस लेने की

अपीलकर्ता के आवेदन को खारिज कर दिया गया था। यदि इस न्यायालय ने उक्त आदेशों को रद्द नहीं किया है, तो हम अपीलकर्ता को उच्च न्यायालय के दिनांक 2.2.1995 के फैसले और आदेश के खिलाफ अपील दायर करने के लिए कहने के उद्देश्य को समझने में विफल हैं। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश के अनुसार, उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय द्वारा की गई पूरी प्रक्रिया को निरर्थक बना दिया है। हमारी विनम्र राय में, खंडपीठ ने गंभीर गलती की है।

23. हमें श्री देसाई द्वारा की गई दलीलों में इस आशय का कोई बल नहीं मिला कि नियम 1959 के नियम 88(2) के मद्देनजर, सीपीसी के पास वर्तमान मामले के तथ्यों पर कोई लागू नहीं था। नियम 88(2) में कहा गया है, कि अधिनियम 1956 की धारा 397 और/या 398 के तहत एक याचिका, अदालत की अनुमति के बिना वापस नहीं ली जाएगी, और इसलिए, श्री देसाई के अनुसार, सीपीसी के प्रावधान, जैसा कि किया गया है जिस मामले में श्री गुप्ता ने भरोसा किया है उस मामले में आवेदन किया है, वर्तमान मामले में कोई आवेदन नहीं है। नियम 6 इस प्रकार है:

> "अधिनियम या इन नियमों द्वारा प्रदान किए गए के अलावा न्यायालय की प्रथा और प्रक्रिया और संहिता के प्रावधान, जहां तक लागू हो, अधिनियम और इन नियमों के तहत सभी कार्यवाहियों पर लागू होंगे। रजिस्ट्रार किसी भी दस्तावेज़ को स्वीकार करने से इनकार कर सकता है जो इन नियमों या न्यायालय की प्रथा और प्रक्रिया के अनुसार अन्यथा प्रस्तुत किया गया है।"

24. उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री अशोक एच.देसाई द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि "जहाँ तक लागू हो" वाक्यांश सीपीसी के आवेदन को बाहर करता है जहाँ नियमों में ही एक विशेष प्रक्रिया निर्धारित है और जैसा कि नियम

88(2) में प्रावधान है कि किसी भी निकासी की अनुमति केवल अदालत की अनुमति से ही दी जाएगी, आगे कोई आवश्यकता नहीं मानी जा सकती।

25. हम ऐसी व्याख्या से सहमत नहीं हैं, विशेष रूप से एक वाक्यांश के संबंध में, जिस पर इस न्यायालय द्वारा बार-बार विचार किया गया है।

26. सिटी इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट बोर्ड, बैंगलोर बनाम एच. नारायणैया आदि आदि, एआईआर 1976 एससी 2403 में, इस न्यायालय ने माना, कि उपरोक्त वाक्यांश का अर्थ है, "जो या तो स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं किया गया है, या आवश्यक निहितार्थ के माध्यम से लागू नहीं है, को बाहर रखा जाना चाहिए"।

27. इसी तरह, मकतूल सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1999 एससी 1131 के मामले में, इस न्यायालय ने माना कि इस वाक्यांश का अर्थ है, कि एक अदालत/प्राधिकरण केवल उस सीमा तक शक्ति का प्रयोग कर सकता है, जहां तक ऐसी शक्तियां लागू हैं। दूसरे शब्दों में, यदि उक्त प्रावधानों की प्रयोज्यता के विरुद्ध कोई निषेधाज्ञा है, तो न्यायालय ऐसे प्रावधानों का उपयोग नहीं कर सकता है।

28. यदि उच्च न्यायालय की खंडपीठद्वारा दी गई व्याख्या को स्वीकार कर लिया जाता है, तो यह न केवल अपीलकर्ता को उपचारहीन बना देगा, जिसके कहने पर इस न्यायालय ने दिनांक 26.4.1996 को आदेश पारित किया था, बल्कि कानूनी में सन्निहित सिद्धांत को भी विफल कर देगा। कहावत, 'उबि जूस इबि इदेम रेमेडियम' (जहां अधिकार है, वहां उपाय है)। इस न्यायालय ने धन्नालाल बनाम कलावतीबाई और अन्य, एआईआर 2002 एससी 2572 में पूर्वोक्त सिद्धांत पर विचार किया और कहा कि, "यदि किसी व्यक्ति के पास अधिकार है, तो उसके पास उसे साबित करने और बनाए रखने के साधन होने चाहिए, और एक उपाय भी होना चाहिए, यदि वह उक्त अधिकार के प्रयोग और उपभोग में घायल हो गया है, और वास्तव में, उपचार के बिना अधिकार की कल्पना करना व्यर्थ

बात है, क्योंकि अधिकार की चाहत और उपचार की चाहत, पारस्परिक हैं"। (यह भी देखें: श्रीमती गंगा बाई बनाम विजय कुमार एवं अन्य, एआईआर 1974 एससी 1126)

29. यह प्रतिवादी नंबर 1 था जिसने इस न्यायालय को कंपनी न्यायालय के न्यायाधीश के आदेश के खिलाफ अपील दायर करने की स्वतंत्रता देते हुए अपीलकर्ता द्वारा दायर अपील का निपटान करने का सुझाव दिया था। इसलिए, प्रतिवादी नंबर 1 के लिए इस तथ्य के संबंध में मुद्दे को उठाना स्वीकार्य नहीं था कि चूंकि सुप्रीम कोर्ट ने कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित दिनांक 16.11.1993 और 18.11.1993 के आदेशों को रद्द नहीं किया था, वे बरकरार रहे। कानूनी कहावत, 'एक्टस क्यूरी नेमिनर ग्रेवबिट यानी अदालत का एक कार्य किसी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा' के मद्देनजर, प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा खंडपीठ के समक्ष ऐसा तर्क नहीं दिया जा सकता था। इस न्यायालय जयलक्ष्मी कोएल्हो बनाम ओसवा जोसेफ कोएल्हो, एआईआर 2001 एससी 1084 में उक्त कहावत से निपटा, और इसके दायरे को समझाया:

> "...जहां आदेश में कुछ ऐसा हो सकता है जो डिक्री में उल्लिखित नहीं है, यह अनजाने में हुई चूक या गलती का मामला होगा। ऐसी चूक के लिए न्यायालय जिम्मेदार है जो कुछ कह सकता है या कुछ ऐसा कहने से चूक सकता है जिसका उसका इरादा कहने या छोडने का नहीं था। गलती के ऐसे सुधार के लिए गुण-दोष के आधार पर किसी नए तर्क या पुन: तर्क की आवश्यकता नहीं है।"

इस न्यायालय के दिनांक 26.4.1996 के आदेश की यदि सख्त शाश्वत व्याख्या की जाती है, तो अपीलकर्ता को उपचार के लिए अयोग्य घोषित कर दिया जाएगा, जो कानून में स्वीकार्य नहीं है। (द्धारा: रामेश्वरलाल बनाम नगर परिषद, टोंक एवं अन्य, (1996) 6 एससीसी 100)।

30. उपरोक्त के मद्देनजर, हमारी सुविचारित राय है कि खंडपीठ ने यह मानने में गलती की कि इस न्यायालय के दिनांक 26.4.1996 के फैसले के बाद, उच्च न्यायालय के लिए कंपनी अधिनियम 1956 की धारा 397/398 के तहत कंपनी की याचिका पर विचार करना स्वीकार्य था, उच्च न्यायालय की खंडपीठ दिनांक 16.11.1993 और 18.11.1993 के पहले के निर्णयों पर भरोसा करते हुए, कानून की नजर में अस्तित्वहीन था।

इस प्रकार, अपील स्वीकार की जाती है, उच्च न्यायालय के दिनांक 24.11.2003 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया जाता है और इस न्यायालय के दिनांक 26.4.1996 के निर्णय का कड़ाई से पालन करते हुए मामलों को कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा नए सिरे से तय करने के लिए भेजा जाता है। मामले पर नए सिरे से फैसला करते समय, खंडपीठ उच्च न्यायालय के 16.11.1993 और 18.11.1993 के पहले के फैसलों पर ध्यान नहीं देगी।

चूंकि मामले लंबे समय से लंबित हैं, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, हम माननीय उच्च न्यायालय से अनुरोध करते हैं कि इस निर्णय और आदेश की प्रमाणित प्रति उच्च न्यायालय के समक्ष दाखिल करने की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर अपीलों पर शीघ्रता से निर्णय लिया जाए। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

के.के.टी. अपीले स्वीकार की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल सुवास की सहायता से अनुवादक अधिवक्ता नृपेन्द्र सिनसिनवार द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण : यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिये स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उददेश्य के लिये इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उददेश्यो के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उददेश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।